न्यायिक सिद्धांत

परिचय

न्यायिक सिद्धांत:

यह सिद्धांत या एक ऐसी स्थिति है जिसे आमतौर पर न्यायालयों द्वारा लागू और बरकरार रखा जाता है। भारतीय संवैधानिक कानून में भी विभिन्न न्यायिक सिद्धांत हैं जो समय के साथ न्यायपालिका द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार विकसित होते हैं।

इस लेख में कुछ महत्त्वपूर्ण न्यायिक सिद्धांतों पर चर्चा की गई है।

आधारभूत संरचना का सिद्धांत (Doctrine of Basic Structure)

- आधारभूत संरचना के घटकों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है।
- संसदीय लोकतंत्र, मौलिक अधिकार, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद, न्यायिक समीक्षा आदि सभी को न्यायालय भारतीय संविधान की मूल संरचना के रूप में मानते हैं।
- **मूल:**
  - आधारभूत संरचना सिद्धांत की उत्पत्ति जर्मन संविधान में पाई जाती है जिसे नाजी शासन के बाद कुछ बुनियादी कानूनों की रक्षा के लिये संशोधित किया गया था।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - वर्ष 1973 के केशवानंद भारती मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार फैसला सुनाया कि संसद के पास संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन करने की शक्ति है, लेकिन यह "संविधान की मूल संरचना" को बदल नहीं सकती है।
  - इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण मामले (वर्ष 1975) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी।
  - सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधिनियम (वर्ष 1975) के उस प्रावधान को अमान्य कर दिया, जिसमें प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष से जुड़े चुनावी विवादों को सभी अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया था।
  - मूल संरचना सिद्धांत की पुष्टि मिनर्वा मिल्स मामले (वर्ष 1980) और बाद में वामन राव मामले (वर्ष 1981) में की गई थी।
  - इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मूल संरचना के सिद्धांत के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 31A और अनुच्छेद 31B की वैधता की जाँच की।

शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत (Doctrine of Separation of Powers)

- यह मुख्य रूप से राज्य के विभिन्न अंगों, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के मध्य शक्तियों के विभाजन को दर्शाता है।
- शक्तियों का पृथक्करण मुख्य रूप से सरकारी शक्तियों के त्रि-सूत्रीकरण को दर्शाता है:
  - एक ही व्यक्ति को राज्य के तीन अंगों में से एक से अधिक का हिस्सा नहीं होना चाहिये।
  - एक अंग को राज्य के किसी अन्य अंग के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।
  - एक अंग को किसी अन्य अंग को सौंपे गए कार्य नहीं करने चाहिये।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
  - भारतीय संविधान के राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों (DPSP) का अनुच्छेद-50 न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करता है, "राज्य, राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिये कदम उठाएगा और इसके अलावा शक्ति के विभाजन की कोई औपचारिक प्रक्रिया नहीं है।"
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - राम जवाया बनाम पंजाब राज्य (वर्ष 1955) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "भारतीय संविधान ने वास्तव में पूर्ण कठोरता से शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को मान्यता नहीं दी है, लेकिन सरकार के विभिन्न भागों या शाखाओं के कार्यों को पर्याप्त रूप से विभेदित किया है।"
  - इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण (वर्ष 1975) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "शक्तियों का पृथक्करण संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है। गणतंत्र के तीन अलग-अलग अंगों में से कोई भी दूसरे को सौंपे गए कार्यों को नहीं कर सकता है।"

तत्त्व और सार का सिद्धांत (Doctrine of Pith and Substance)

- Pith का अर्थ है 'प्रकृति' (True Nature) और Substance का अर्थ है 'किसी चीज का सबसे महत्त्वपूर्ण या आवश्यक हिस्सा'।
- **मूल:**
  - इस सिद्धांत को पहली बार कनाडा के संविधान में स्वीकार किया गया था और भारत में इसे भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत स्वतंत्रता पूर्व अवधि में अपनाया गया था।
- **प्रयोज्यता:**
  - Pith और Substance के सिद्धांत को आमतौर पर वहाँ लागू किया जाता है जहाँ यह निर्धारित करने का प्रश्न उठता है कि क्या कोई विशेष कानून किसी विशेष विषय (सातवीं अनुसूची में उल्लिखित) से संबंधित है, ऐसे में न्यायालय मामले के सार को देखता है।
  - विधायिका की उपयोगिता (अनुच्छेद 246) से संबंधित मामलों में इसकी प्रयोज्यता के अलावा Pith और Substance के सिद्धांत को संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और राज्य विधानसभाओं द्वारा बनाए गए कानूनों (अनुच्छेद 254) में प्रतिकूलता से संबंधित मामलों में भी लागू किया जाता है।
  - ऐसे मामलों में केंद्र और राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच असंगति को हल करने के लिये सिद्धांत को लागू किया जाता है।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - प्रफुल्ल बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स (वर्ष 1946) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि राज्य का ऐसा कानून, जो उधार दिये गए धन (राज्य का विषय) से संबंधित है, केवल इसलिये कि यह संयोग से प्रॉमिसरी नोट को प्रभावित करता है, अमान्य नहीं है।

आकस्मिक या सहायक शक्तियों का सिद्धांत

(Doctrine of Incidental or Ancillary Powers)

- यह तत्त्व और सार के सिद्धांत के अतिरिक्त व्याख्या से विकसित हुआ है।
- इस सिद्धांत को तब लागू किया जाता है जब किसी मामले या प्रश्न में प्रमुख विधियों की सहायता करने की आवश्यकता होती है।
- Pith और Substance का सिद्धांत केवल विषयों से संबंधित है, लेकिन आकस्मिक या सहायक शक्तियों का सिद्धांत ऐसे विषयों और उनसे जुड़े मामलों पर कानून बनाने की शक्ति से संबंधित है।
- **मूल:**
  - इस सिद्धांत का विकास अंग्रेज़ी कोर्ट ऑफ अपील के "R. v. Waterfield (वर्ष 1963)" से संबंधित निर्णय से हुआ है।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
  - अनुच्छेद 4, अनुच्छेद 2 और 3 के तहत राज्यों के नाम बदलने हेतु प्रदत्त कानून के पूरक और प्रासंगिक मामलों पर कानून में परिवर्तन करने की शक्ति के बारे में बात करता है।
  - अनुच्छेद 169 राज्यों में विधानपरिषदों के उन्मूलन या निर्माण पर संसद को दी गई शक्ति के बारे में बात करता है, "जैसा कि कानून के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिये आवश्यक हो सकता है और इसमें ऐसे पूरक, आकस्मिक और परिणामी प्रावधान भी शामिल हो सकते हैं जिन्हें संसद आवश्यक समझे।"
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - राजस्थान राज्य बनाम जी चावला (वर्ष 1958) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "विधि के विषय पर कानून बनाने की शक्ति के साथ उससे जुड़े सहायक मामले पर कानून बनाने की शक्ति भी होती है जिसे उपर्युक्त कानून बनाने की शक्ति में ही शामिल किया जा सकता है।"

विच्छेदनीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability)

- इसे पृथक्करणीयता के सिद्धांत के रूप में भी जाना जाता है और यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है।
- संविधान के अनुच्छेद 13 के खंड (1) के अनुसार, यदि भारत में लागू कोई भी कानून मौलिक अधिकारों के प्रावधानों से असंगत है तो विसंगति की उस सीमा तक वे शून्य होंगे एवं संपूर्ण कानून/अधिनियम को अमान्य नहीं माना जाएगा, बल्कि केवल वे प्रावधान जो मौलिक अधिकारों के अनुरूप नहीं हैं, वे अमान्य होंगे।
- **सीमा:**
  - यदि कानून का वैध और अमान्य भाग आपस में इतना अधिक मिला हुआ हो कि उसे अलग नहीं किया जा सकता है तो पूरा कानून या अधिनियम अमान्य हो जाएगा।
- **मूल:**
  - सेवरेबिलिटी का सिद्धांत नॉर्डेनफेल्ट बनाम मैक्सिम नॉर्डेनफेल्ट गन्स एंड एम्युनिशन कंपनी लिमिटेड के मामले में इंग्लैंड से विकसित हुआ है, जहाँ यह मुद्दा एक ट्रेड क्लॉज़ से संबंधित था।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (वर्ष 1950) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान के असंगत होने की स्थिति में अधिनियम का केवल विवादित प्रावधान ही शून्य होगा, संपूर्ण अधिनियम नहीं और जितना हो सके अधिनियम को बचाने के लिये हरसंभव प्रयास किया जाना चाहिये।
  - बॉम्बे राज्य बनाम एफ.एन. बलसारा (वर्ष 1951) मामले में बॉम्बे प्रोहिबिशन एक्ट की आठ धाराओं को अमान्य घोषित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो हिस्सा मौलिक अधिकारों की सीमा तक अमान्य था, उसे बाकी अधिनियम से अलग किया जा सकता है।

आच्छादन का सिद्धांत (Doctrine of Eclipse)

- यह तब लागू होता है जब कोई कानून/अधिनियम मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।
- ऐसे मामले में मौलिक अधिकार अधिनियम पर भारी पड़ जाता है और इसे अप्रवर्तनीय बना देता है लेकिन यह प्रारंभ से ही शून्य नहीं होता।
- यदि मौलिक अधिकारों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को हटा दिया जाए तो उन्हें सुदृढ़ किया जा सकता है।
- यह सिद्धांत केवल नागरिकों के लिये निष्क्रिय स्थिति में रहते हैं, लेकिन ऐसे गैर-नागरिकों के खिलाफ संचालित होते रहते हैं, जिन्हें मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
  - आच्छादन का सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13(1) में निहित है। आच्छादन का सिद्धांत संविधान के बाद बनने वाली विधियों पर लागू नहीं होता है।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - यह निर्णय भारत में पहली बार भीकाजी नारायण धाकरा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (वर्ष 1955) मामले में सुनाया गया था, जहाँ मध्य प्रांत और बरार मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 1947 में प्रांतीय सरकार को संपूर्ण प्रांतीय मोटर परिवहन व्यवसाय लेने का अधिकार दिया गया था, जो अनुच्छेद 19(1)(छ) का उल्लंघन है।
  - सुप्रीम कोर्ट ने माना कि आक्षेपित कानून को कुछ समय के लिये मौलिक अधिकार द्वारा आच्छादित (Eclipsed by the Fundamental Rights) कर लिया गया था।

प्रादेशिक गठजोड़ का सिद्धांत (Doctrine of Territorial Nexus)

- इसमें कहा गया है कि राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून राज्य के बाहर लागू नहीं होते हैं, जब तक कि राज्य और विषय-वस्तु के बीच पर्याप्त संबंध न हो।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
  - यह सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 245 से अपनी शक्ति प्राप्त करता है।
  - अनुच्छेद 245 (2) में यह प्रावधान है कि संसद द्वारा बनाया गया कोई भी कानून इस आधार पर अमान्य नहीं होगा कि इसका अतिरिक्त-क्षेत्रीय संचालन होगा यानी यह भारत क्षेत्र के बाहर प्रभावी होगा।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - ए.एच. वाडिया बनाम आयकर आयुक्त (वर्ष 1948) मामले में यह माना गया था कि किसी सर्वोच्च विधायी प्राधिकरण की वैधता पर प्रश्न उठाने के आधार पर अधिनियमन की अतिरिक्त क्षेत्रीयता का प्रश्न कभी नहीं उठाया जा सकता है।
  - बॉम्बे स्टेट बनाम आरएमडीसी (वर्ष 1952) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बॉम्बे विधायिका को प्रतिवादी पर कर लगाने में सक्षम बनाने के लिये एक पर्याप्त प्रादेशिक गठजोड़ मौजूद था क्योंकि सभी गतिविधियाँ जो कि प्रतियोगी से आमतौर करने की उम्मीद की जाती है, वे बॉम्बे में हुईं।

छद्मता का सिद्धांत (Doctrine of Colourable Legislation)

- इस सिद्धांत को "संविधान के साथ धोखाधड़ी" भी कहा जाता है।
- छद्मता का सिद्धांत तब लागू होता है जब किसी विधायिका के पास किसी विशेष विषय पर कानून बनाने की शक्ति नहीं होती है लेकिन फिर भी वह अप्रत्यक्ष रूप से उस पर कानून बनाती है।
- इस सिद्धांत को लागू करने से आक्षेपित विधान के भविष्य का निर्णय होता है।
- **मूल:**
  - इस सिद्धांत की उत्पत्ति एक लैटिन कहावत से हुई है, जिसका इस संदर्भ में अर्थ है: "जो कुछ भी विधायिका प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकती, वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकती"।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
  - यह सिद्धांत आमतौर पर अनुच्छेद 246 पर लागू होता है जिसने संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के तहत विभिन्न विषयों को रेखांकित करके संसद एवं राज्य विधानसभाओं की विधायी क्षमता का सीमांकन किया है।
- **सीमा:**
  - इस सिद्धांत का वहाँ कोई अनुप्रयोग नहीं है जहाँ एक विधायिका की शक्तियाँ किसी संवैधानिक सीमा से बँधी नहीं हैं।
  - यह अधीनस्थ विधान पर भी लागू नहीं होता है।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
  - आर.एस. जोशी बनाम अजीत मिल्स (वर्ष 1977) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि "बल/शक्ति के विधान में, प्रशासनिक बल पर छद्म अभ्यास अथवा जबरन वसूली या संविधान में लिखी गई बातों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना आदि ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं जो केवल यह दर्शाती हैं कि विधानसभा एक विशिष्ट कानून को अधिकृत करने के मामले में दक्ष नहीं है, भले ही उस पर योग्यता का निशान लगाया गया हो, और कुल मिलाकार यह छद्म अधिनियमन है।"

प्रसादपर्यंत का सिद्धांत (Doctrine of Pleasure)

- **मूल:**
  - प्रसादपर्यंत के सिद्धांत की उत्पत्ति अंग्रेज़ो के कानून से हुई जिसके अनुसार, एक सिविल सेवक क्राउन के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
- **संवैधानिक प्रावधान:**

- अनुच्छेद 155 के अनुसार, किसी राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
    - अनुच्छेद 310 के तहत सिविल सेवक (रक्षा सेवाओं, सिविल सेवाओं, अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य या केंद्र/राज्य के तहत सैन्य पदों या सिविल पदों पर नियुक्त व्यक्ति) राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यंत जैसा भी मामला हो, पद धारण करते हैं।
- **सीमा:**
    - अनुच्छेद 311 इस सिद्धांत पर प्रतिबंध लगाता है और सिविल सेवकों को उनके पदों से मनमानी बर्खास्तगी के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय:**
    - बिहार राज्य बनाम अब्दुल मजीद (वर्ष 1954) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अंग्रेज़ी कानून को पूरी तरह से और इसके सभी कठोर निहितार्थों के साथ नहीं अपनाया गया है।
    - भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल (वर्ष 1965) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "प्रसादपर्यंत सिद्धांत" न तो सामंती युग का अवशेष था और न ही यह ब्रिटिश क्राउन के किसी विशेषाधिकार पर आधारित था, बल्कि सार्वजनिक नीति पर आधारित था।

सामंजस्यपूर्ण निर्माण का सिद्धांत

(Doctrine of Harmonious Construction)

- सामंजस्यपूर्ण निर्माण शब्द का तात्पर्य ऐसे निर्माण से है जिसके द्वारा किसी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के बीच सामंजस्य या एकता स्थापित की जाती है।
- जब वैधानिक प्रावधान के शब्द एक से अधिक अर्थ रखते हैं और संदेह है कि कौन सा अर्थ प्रबल होना चाहिये, तो उनकी व्याख्या इस तरह से होनी चाहिये कि प्रत्येक का एक अलग प्रभाव हो, न की बेमानी या शून्य हो।
- **मूल:**
    - कई मामलों में अदालतों द्वारा दी गई व्याख्याओं के माध्यम से सामंजस्यपूर्ण निर्माण का सिद्धांत उत्पन्न हुआ है।
    - सिद्धांत के विकास का मूल आशय शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ मामले के ऐतिहासिक निर्णय के साथ भारत के संविधान में किये गए पहले संशोधन से लगाया जा सकता है।
- **सामंजस्यपूर्ण निर्माण के नियम का सिद्धांत:**
    - सीआईटी बनाम हिंदुस्तान बल्क कैरियर्स (वर्ष 2003) के ऐतिहासिक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सामंजस्यपूर्ण निर्माण के नियम के पाँच सिद्धांत निर्धारित किये:
        - न्यायालयों को विरोधाभासी प्रावधानों के टकराव से बचना चाहिये और उन्हें विरोधाभासी प्रावधानों को समझना चाहिये।
        - एक खंड के प्रावधान का इस्तेमाल दूसरे में निहित प्रावधान को शून्य करने के लिये नहीं किया जा सकता है, जब तक कि न्यायालय सभी प्रयासों के बावजूद अपने मतभेदों को सुलझाने का कोई रास्ता नहीं ढूँढ पाता है।
        - जब विरोधाभासी प्रावधानों में मतभेदों को पूरी तरह से सुलझाना असंभव होता है तो अदालतों को उनकी व्याख्या इस तरह से करनी चाहिये ताकि दोनों प्रावधानों का यथासंभव प्रभाव स्थापित किया जा सके।
        - न्यायालयों को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि वैसी व्याख्या जो एक प्रावधान को शून्य तक कम कर देती है, सामंजस्यपूर्ण निर्माण नहीं है।
        - सामंजस्य स्थापित करना किसी वैधानिक प्रावधान को नष्ट करना या उसे निष्फल करना नहीं है।
- **महत्त्वपूर्ण निर्णय**:
    - केरल शिक्षा विधेयक 1951 के मामले में यह माना गया था कि मौलिक अधिकारों को तय करने में अदालत को निदेशक सिद्धांतों पर विचार करना चाहिये और सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत को अपनाना चाहिये एवं दोनों संभावनाओं के मध्य एक संतुलन बनाकर जितना संभव हो कानून को उतना प्रभाव दिया जाना चाहिये।
    - ईस्ट इंडिया होटल्स लि. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (वर्ष 2001) मामले में यह माना गया कि एक अधिनियम को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिये। विभिन्न प्रावधानों के मध्य सामंजस्य बनाना है और उन सभी को प्रभाव देना है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/judicial-doctrines